[JOURNAL OF ADVANCES AND SCHOLARLY RESEARCH IN ALLIED EDUCATION VOL. I, ISSUE NO. II]
April , 2011
ISSN-2230-7540

“प्राचीन भारतीय शिक्षा पर बौद्ध दर्शन का प्रभाव एवं वर्तमान में इसकी प्रासंगिता”

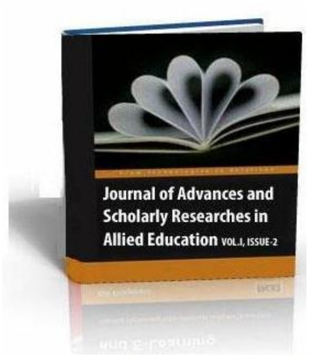

Vijay Sharma

Research Scholar, CMJ University, Shillong, Meghalaya

बौद्ध दर्शन आजकल संसार के महनीय दर्शनों में मुख्य है। ईसाई मतावलंबियों की संख्या अधिक बतलाई जाती है, परन्तु उनमें इतनी पारस्परिक विभिन्नता है कि सबको एक ही धर्म के अंतर्गत मानना न्यायसंगत नहीं है परन्तु बौद्ध धर्म में ऐसी बात नहीं है। यह एक ऐसा धर्म है जिसने हिन्दू धर्म को ध्वस्त कर देने में सफलता प्राप्त की और लगभग दो सौ वर्षों तक भारत का राजकीय धर्म बना रहा। ईसाई तथा इस्लाम धर्म जैसे प्रचारक धर्मों ने भी संसार में इतनी शीघ्र सफलता नहीं पायी जितनी बौद्ध धर्म को मिली। बुद्ध ने मनुष्यों की इच्छापूर्ति के लिए अपने धर्म का प्रचार नहीं किया। उन्होंने न तो स्वर्ग का दरवाजा ही जनता के लिए मुफ्त में खोला और न ही मोक्ष प्राप्ति का लोभ ही जनता को दिया। बौद्ध धर्म का त्रिरत्न (1) बुद्ध (2) संघ तथा (3) धर्म था। बुद्ध का व्यक्तित्व एक ऐसी वस्तु थी जिसने संसार के लोगों को अनायास ही आकृष्ट किया। बुद्ध का व्यक्तित्व सचमुच महान्, अलौकिक और दिव्य था। अपूर्व त्याग, बुद्ध के जीवन का महान् गुण था। राजघराने में पैदा होने पर भी इन्होंने अपने विशाल साम्राज्य को ठुकरा दिया। राज–प्रासादों के मखमली गद्दों को छोड़कर इन्होंने जंगल का कठिन जीवन स्वीकार किया। इन्होंने अपने शरीर को सुखाकर कांटा कर दिया परन्तु धन तथा सुख की कामना नहीं की। कपिलवस्तु के इस राजकुमार ने अपनी युवावस्था में ही राज्य, गृह और गृहिणी से नाता तोड़ और विरक्ति तथा तपस्या से संबंध जोड़कर विश्व शांति का उपदेश दिया। बुद्ध ने अपनी भरी जवानी में गृह त्याग किया था। इनकी स्त्री यशोधरा परम सुंदरी रमणी थी। फिर भी बुद्ध ने अपनी काम वासना को कुचलकर पत्नी का त्याग कर दिया और शेष जीवन को आत्मदान और संयम में बिताया। जब वे तपस्या कर रहे थे, उस समय अनेक अप्सराओं और परम सुंदरी युवतियों को लेकर उन पर आक्रमण किया गया परन्तु उनके काम वासना से रहित मानस में, तनिक भी विकार नहीं पैदा हुआ और दृढ़ प्रतिज्ञ होकर अपने आसन से वे तनिक भी नहीं डिगे। वर्तमान में उनकी इंद्रिय निग्रह या

आत्मसंयम अनुकरणीय है। बुद्ध का ह्रदय मानव प्रेम से पूर्णतः भरा हुआ था। मनुष्यों के नाना प्रकार के दुःखों को देखकर उनका ह्रदय टूक–टूक हो जाता था। वे दूसरों के दुःखों में स्वयं दुःखी रहते थे। यही कारण है कि उन्होंने मानव दुःखों का नाश करना अपने जीवन का चरम लक्ष्य बनाया। मनुष्यों के दुःखों को दूर करने की औषधि पाने के लिए ही वे अनेक वर्षों तक जंगल में भटकते रहे और अंत में उसे प्राप्त कर ही विश्राम लिया। उन्होंने चार आर्य–सत्यों तथा अष्टांगिक मार्गों का अनुसंधान कर मनुष्यों के कलेश निवारण का उपाय बतलाया। उन्होंने घर छोड़ा, घरिनी छोड़ी, राज्य छोड़ा और सुख छोड़कर मानव दुःखों को दूर करने का परमौषध प्राप्त किया।

बुद्ध का सारा जीवन परोपकार का प्रतीक है, पर–सेवा का उदाहरण है तथा लोक–मंगल का ज्वलंत प्रमाण है। बौद्ध धर्म के उदय से भारत में एक नवीन दार्शनिक चिन्तन का विकास हुआ। बौद्ध धर्म के उदय के समय अनेक परस्पर विरोध वादों का जंजाल व्याप्त था। पर इन वादों में वैदिन चिंतन के समक्ष खड़े होने की सामर्थ्य न थी। गौतम बुद्ध ने अपने अनत्तावाद या अनात्मवाद से परम्परागत वैदिक चिंतन या उपनिर्णायक आत्मवाद को झकझोर कर रख दिया। इस प्रकार भारतीय दर्शन को चिंतन की दो परस्पर विरोधी धराएं प्राप्त हुई–एक उपनिषदों का आत्मवाद तो दूसरा गौतम बुद्ध का अनात्मकता। उपनिषदिक आत्मवाद में देववाद व कर्मकाण्ड की आलोचना होते हुए भी वैदिक आधार को कभी इंकार नहीं किया गया, पर बौद्ध धर्म ने वैदिक कर्मकाण्ड का तो विरोध किया किन्तु बाद में स्वयं देववाद में फंस विनाश को प्राप्त हुआ। पर भारतीय चिंतनधारा में इन्हीं दो चिंतन धाराओं का महत्व रहा है। बौद्धों का यह अनात्मवाद अपने में ही समद्ध मात्र नहीं वरन् विचारोत्तेजक भी रहा है।

बुद्ध काल में अनेक दार्शनिक वादों का प्रादुर्भाव हुआ। ब्राह्मण धर्म लोक धर्म बन चुका था और बौद्ध धर्म के प्रचार होने पर भी इसकी लोकप्रियता में कोई अंतर नहीं आया। बुद्ध का ध्येय बौद्ध दर्शन को लोकप्रिय बनाना था। अतः उन्होंने लोकमत को समुचित आदर प्रदान करते हुए अपने विचारों का प्रचार किया। लोक साहित्य पर भी गौतम बुद्ध के गंभीर व्यक्तित्व का व्यापक प्रभाव पड़ा। वैदिक ऋचाओं का विषय देवस्तुति मात्रा था एवं परवर्ती या उत्तर वैदिक साहित्य यज्ञ एवं कर्मकाण्डों से भरा पड़ा था। पर गौतम बुद्ध ने थेर–थेरी गाथाओं, जातक कथाओं और पिटकों के माध्यम से विषयों को अपनी वार्ता का विषय बनाया। शिक्षा के सिद्धांतों और प्रयोगों के संबंध में बौद्धों और हिंदुओं के दृष्टिकोण में कोई मौलिक अंतर नहीं था। बौद्ध धर्म का मूल मत था कि संसार दुःख से परिपूर्ण है। संसार का परित्याग करने से ही मोक्ष मिलेगा।

अतः प्रारंभ में बौद्धों ने भिक्षुओं और भिक्षुणियों की शिक्षा पर ही ध्यान दिया तो उचित ही था। किन्तु कालान्तर में जब इन्होंने जन साधारण को शिक्षा देना स्वीकार कर लिया तो इनकी शिक्षा प्रणाली में हिंदूओं की शिक्षा प्रणाली में कोई अंतर नहीं था। दोनों पद्धतियों के आदर्श और ढंग समान थे। बुद्ध का यह अत्यन्त विवेकपूर्ण आदेश था कि प्रत्येक उपासक को विनय और धर्म की सम्यक् शिक्षा देनी चाहिए। बुद्ध के इस वचन के कारण ही बौद्ध विहारों ने शिक्षा कार्य अपने हाथ में लिया और उसका विकास किया। बौद्ध संघ में सम्मिलित होने के लिए दो संस्कार आव यक थे। प्रथम था प्रब्बज्जा तथा दूसरा उपसम्पदा। प्रब्बज्जा से उपासकत्व का प्रारंभ होता था। प्रब्बज्जा 8 साल से अधिक उम्र के किसी भी व्यक्ति को दी जा सकती थी। संरक्षक की अनुज्ञा आवश्यक थी। उपासक काल के अंत में उपसम्पदा दी जाती थी। उपसम्पदा के समय

ISSN-2230-7540

उपासक की उम्र 20 वर्ष से कम न रहनी चाहिए। ऋणी, अशक्त या राज पुरूष को दीक्षा नहीं दी जा सकती थी। संपूर्ण संघ की स्वीकृति से ही दीक्षा दी जा सकती थी। बौद्ध धर्म में दीक्षित होने के लिए जात–पात का कोई भेद न था। उपासक को बौद्ध धर्म और संघ में विश्वास प्रकट करना पड़ता था तथा किसी विद्वान भिक्षुक को आचार्य चुनना पड़ता था। भिक्षु को कड़ाई से संघ के नियमों का पालन करना पड़ता था। यदि वह कोई अक्षम्य गंभीर अपराध करता तो पूरे संघ की सभा उसे संघ से निष्कासित कर देती थी। हिन्दू ब्रह्मचारी की भांति उसे भी भोजन की भिक्षा मांगनी पड़ती थी। श्रावकों के निमंत्रण पर उसके घर पर ही वह भोजन कर सकता था। विहार के सभी छोटे–बड़े कार्य यथा फर्श और बर्तनों की सफाई, पानी भरना तथा भंडारों का निरीक्षण, उसे करने पड़ते थे। उपासक और आचार्य में पुत्र और पिता जैसा संबंध था। परस्पर आदर–विश्वास और प्रेम की भावना से वे एक हो जाते थे। हिन्दू ब्रह्मचारी की भांति बौद्ध उपासक को भी आचार्य के सहायतार्थ शारीरिक परिश्रम करना पड़ता था। वह आचार्य का आसन और चीवर का परिवहन करता, उन्हें जल दातौन देता, उनके भिक्षा–पात्र तथा बर्तनों की सफाई करता तथा भिक्षा ग्रहण या उपदेश के लिए आचार्य के नगर या ग्राम गमन के समय उनके सेवक के रूप में साथ–साथ जाता था। आचार्य उपासक को विनय के नियम बतलाता, उसका ध्यान ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह तथा इंद्रिय संयम के व्रत की ओर आकर्षित करता तथा सन्ध्याकालों में अपने उपयोगी व्याख्यानों से उसकी बौद्धिक और आध्यात्मिक प्रगति में सहायता करता था।

उपासकों के लिए भिक्षा और चीवर प्राप्ति में सहायता करना तथा बीमारी के समय उसकी सेवा सुश्रुषा करना आचार्य का धर्म था। आचार्य का जीवन उपासक के लिए दृष्टांतस्वरूप था किन्तु यदि आचार्य अपने विश्वासों से विचलित होने लगे व संघ के नियमों का उल्लंघन करने को उद्यत हो, उपासक को उसे च्युत होने से रोकने की अनुमति थी। आचार्यों को अपनी आवश्यकताएं कम से कम कर देनी पड़ती थी। नालंदा के प्रसिद्ध अध्यापकों को खर्च के लिए साधारण विद्यार्थियों से तीन गुना अधिक मिलता था। बौद्ध आचार्यों का जीवन सरल था। समाज उन पर जितना व्यय करता था वह प्रायः नगण्य ही था। वे यावज्जीवन अपने विषयों का अध्ययन करते थे क्योंकि उनके अध्ययन में विवाह जैसी कोई बाधा नहीं आती थी। प्रारंभ में बौद्ध शिक्षा पूर्णतया विहारों में ही सीमित थी। इसका प्रबंध मूलतः उन्हीं के लिए था जो बौद्ध धर्म में दीक्षित होना चाहते थे। यह स्वाभाविक ही था। बौद्ध धर्म के अनुसार यह संसार दुःखमय है। इसके परित्याग से ही निर्वाण प्राप्ति संभव है।

अतः व्यावहारिक जीवन और उद्यमों की शिक्षा की ओर से बौद्ध धर्म का उदासीन रहना स्वाभाविक ही था। किंतु कालांतर में यह अनुभव किया जाने लगा कि बौद्ध धर्म वे प्रचार के लिए जन साधारण की सहानुभूति प्राप्त करना आवश्यक है यदि प्रतिद्वन्दी ब्राह्मण पुरोहितों की भांति बौद्ध भिक्षु भी शिक्षा के प्रसार में सहायक हो तो यह कार्य सरलतापूर्वक हो सकता है। बुद्ध की शिक्षाओं का प्रसार का उत्तम मार्ग नयी पीढ़ी को शिक्षा का भार लेने में था। इस कार्य में संघ का उद्देश्य था समाज के नवयुवकों के मस्तिष्क को अपरिपक्वावस्था में ही अपने अनुकूल बनाना। यदि संघ ने उपासकों के अतिरिक्त जन साधरण की शिक्षा का प्रबंध अपने हाथ में ले लिया। प्राचीन भारत में सुदीर्घ काल तक अध्यापक अपने ही अभिमंत्रण और दायित्व पर अपने घरों पर ही अध्यापन का कार्य करते थे।

ISSN-2230-7540

भारत में संघटित शिक्षण संस्थाओं के उदय का श्रेय बौद्ध धर्म को ही मिलना चाहिए। यह स्वाभाविक ही था। संघों के रूप में बौद्ध विहार पहले से ही थे। इसीलिए जब ये विहार शिक्षण संस्थाओं के रूप में बदल गये तो इनका स्वरूप भी सामाजिक शिक्षण संस्थाओं का हो गया। बौद्ध विहार पाठशालाओं की प्रेरणा से ही हिन्दू मन्दिरों में भी पाठशालाएं खुलने लगीं। जिस काल में बौद्ध धर्म उन्नति के शिखर पर था देश के कोने–कोने में विहार का जाल बिछा हुआ था। लगभग 10 प्रतिशत विहारों में उच्च शिक्षा दी जाती थी। इसमें नालंदा, बलभी और विक्रमशिला जैसे विहार विश्वविद्यालयों की ख्याति ज्ञान के केंद्र के रूप में विश्व भर में थी। मध्य एशिया और पूर्वी एशिया में इन्होनें भारतीय शिक्षा की यश पताका स्थापित की थी। सुदूर जावा के एक राजा ने भी नांलदा में दान किया था।

श्शिक्षा के इन केन्द्रों में अक्षय निधियों के दान में भारतीय राजे–महाराजों तथा सेठों में होड़ लगी हुई थी। बदले में वे निःशुल्क शिक्षा वितरित करते थे इतना ही नही, भिक्षुओं को भी निश्चित रूप से तथा अन्य छात्रों को भी संभवतः यहां से भोजन और वस्त्र भी मिलता था। बौद्ध विहार या तो स्वतंत्र नगर ही थे या नगरों और गांवों के उपान्त में बसे हुए थे। अतः उनमें भी भांाति विराजती थी। यद्यपि इन विहारों में चलने वाले विद्यालयों का प्रबंध बौद्ध करते थे। किंतु ये संस्थाएं न तो साम्प्रदायिकता थी न इनमें केवल धर्म की ही शिक्षा दी जाती थी। इनमें कोई संदेह नहीं कि इनके पाठयक्रम में बौद्ध दर्शन प्रमुख था किन्तु हिन्दुओं और जैनों के विभिन्न सम्प्रदायों के धर्मों और दर्शनों के अध्ययन का भी पर्याप्त प्रबंध था। युवाङ्च्वाङ् जितने दिनों भारत में रहा उसका दो बटे पांच समय उसने हिंदू धर्म और दर्शन के अध्ययन में लगाया था। इनमें पाठ्यक्रम धर्मशास्त्र, दर्शन और न्याय तक ही सीमित न था। संस्कृत साहित्य, ज्योतिष, आयुर्वेद, व्यवहार–शास्त्र, राजनीति और शासन प्रबंध की भी शिक्षा विद्यार्थियों को दी जाती थी ताकि वे सरकारी सेवा में प्रविश्ट हो सकें या अन्य उपयोगी या बुद्धिवादी पेशे अपना सकें। पुस्तकें उस काल में दुर्लभ और बहुमूल्य थी। अतः विद्यार्थियों को महत्वपूर्ण ग्रंथों को कण्ठस्थ कर लेने के लिए उत्साहित किया जाता था। शास्त्रार्थों और वाद–विवादों में यह बड़े काम का सिद्ध होता था। किन्तु बौद्ध शिक्षा पुस्तकें रटने से कोसों आगे थी।

बौद्ध शिक्षा प्रणाली में तर्क और विश्लेषण का महत्वपूर्ण स्थान था। युवाङ्. च्वाङ् और इत्सिङ् जैसे तर्कशील विद्यार्थियों ने भारतीय आचार्यों की व्याख्या और स्पष्टीकरण की प्रणाली की भूरि–भूरि प्रशंसा की है। प्रत्येक छात्र की वैयक्तिक प्रगति पर ध्यान रखा जाता था। नालंदा में एक आचार्य के अंतर्गत दस से अधिक विद्यार्थी नहीं दिये जाते थे। ईसा की पांचवीं शताब्दी के बाद भारत में भिक्षुणी संघ नहीं रह गये। अतः जब बौद्ध विहार अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के विद्यालयों के रूप में विकसित हुये उनमें वितरित होने वाली शिक्षा नारी जगत को कोई लाभ नहीं होता था। उस काल में बालिकाओं का विवाह भी अल्पवय में ही हो जाता था। पूर्वकाल में बौद्ध संघ में नारियों के प्रवेश की अनुमति मिल जाने के कारण नारी शिक्षा को विशेषतया उच्च सामंतों और श्रेष्ठियों के घरों को विशेष प्रोत्साहन मिला था। इन वर्गों की बहुत सी नारियां बौद्ध संघ में सम्मिलित हुई थी। उन्होंने धर्म और दर्शन के अध्ययन में अपना सारा जीवन उत्सर्ग कर दिया था। उनके अनुकरण पर साधरण घरों की नारियों में भी शिक्षा प्रसार में अप्रत्यक्ष रूप से पर्याप्त प्रोत्साहन मिला। इस बात के कोई प्रमाण नहीं मिलते कि प्रारंभिक काल में बौद्ध धर्म जन साधरण की शिक्षा में रूचि रखता था। ईसा की आरंभिक शताब्दियों में महायान

ISSN-2230-7540

के उदय के साथ–साथ बौद्ध–विहारों ने साधारण जनता को भी शिक्षित करने का कार्य प्रारंभ कर दिया। किन्तु चीनी यात्रियों के लेखों से ज्ञात होता है कि बौद्ध–विहारों में मुख्यतया उच्च शिक्षा की ही व्यवस्था थी। प्राचीन भारत में शिक्षा के प्रसार में अपनी देन पर बौद्ध धर्म पर गर्व कर सकता है। इसके विद्यालयों ने सभी जातियों और देशों के विद्यार्थियों के लिए अपने द्वार खोल दिये थे। बौद्ध धर्म के ही प्रभाव के कारण देश में संघटित पाठशालाओं का उदय हुआ। उच्च शिक्षा में अपनी कुशलता से इसने अंतर्राष्ट्रीय जगत में भारत का स्थान ऊंचे उठाया था। इसकी उच्च शिक्षा की पूर्णतः से आकर्षित होकर कोरिया, चीन, तिब्बत और जावा जैसे दूर–दूर के देशों के विद्यार्थी यहां अध्ययन करने आते थे।

आधुनिक काल में पूर्वी एशिया के देश भारत के प्रति जो सांस्कृतिक सहानुभूति रखते हैं उसका एकमात्र श्रेय प्राचीन भारत के बौद्ध विद्यालयों का ही है। यदि आज किसी लुप्त भारतीय ग्रंथ का चीनी भाषा में पता मिलता है या किसी बहुमूल्य संस्कृत पुस्तक का हस्तलिखित तिब्बत या चीन या मध्य एशिया में प्राप्त होता है तो इसका भी संपूर्ण श्रेय इन बौद्ध–विद्यालयों को ही है जहां चीनी विद्यार्थी इन पुस्तकों की प्रतिलिपि करके अपने देश ले जाते थे। तुलनात्मक अध्ययन की नींव रखकर बौद्ध शिक्षा ने हिन्दू न्याय और दर्शन के विकास में भी योग दिया था। प्रारंभिक काल में बौद्धों ने मातृभाषा द्वारा शिक्षा देने का समर्थन दिया था किन्तु उत्तर काल में यह संस्कृत के आकर्षण और प्रभाव से अपने को अछूता न रख सके। अंततोगत्वा इन्होंने भी उसी भाषा के माध्यम से शिक्षा देना प्रारंभ कर दिया। जिस प्रकार से वैदिक काल की शिक्षा की अनेक विशेषताएं वर्तमान समय में भी प्रासंगिक है ठीक उसी प्रकार से बौद्ध काल की शिक्षा की अनेक विशेषताएं भी आधुनिक समय में उपादेय सिद्ध हो सकती है। यद्यपि बौद्ध कालीन शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य बौद्ध धर्म का प्रचार व प्रसार करना था, तथापि बौद्ध शिक्षा के अन्य उद्देश्य जैसे नैतिक चरित्र का विकास, व्यक्तित्व का विकास तथा जीविका की तैयारी आज भी पूर्णतया प्रासंगिक है। वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में इन उद्देश्यों को समाहित करके ही शिक्षा प्रणाली को पूर्ण बनाया जा सकता है। बौद्ध शिक्षा प्रणाली के 'दस सिक्खा पदानि' अर्थात् दस शिक्षा पद आज भी पूर्णतया उपयोगी तथा सार्थक है।

इन दस आदेशों का छात्रों के द्वारा यदि पालन किया जाएगा तो वर्तमान समय के साम्प्रदायिक वातावरण, भ्रष्ट आचरण, मादक पदार्थों का प्रचलन, झूठ बोलना, निन्दा आदि का स्वतः ही निवारण हो जाएगा। बौद्ध काल में प्रचलित छात्र–अध्यापक संबंधें को यदि पुनर्जीवित किया जाये तो वर्तमान शिक्षा संस्थाओं में दिन–प्रतिदिन होने वाली हड़ताल, बंद उपद्रव, अध्यापकों के साथ होने वाली अभद्रता, छात्र दंगे आदि स्वतः ही बंद हो जाएंगे। निःसंदेह बौद्ध शिक्षा की कुछ विशेषताएं आज भी प्रासंगिक हैं। यद्यपि बौद्ध धर्म व गौतम बुद्ध के उपदेश बौद्ध कालीन शिक्षा प्रणाली के केंद्र बिन्दु थे परन्तु बौद्ध शिक्षा में निहित शांति, अहिंसा व वसुधैव कुटुम्बकम् के सिद्धांत, प्रजातांत्रिक संगठन की प्रवृत्ति, छात्रों व अध्यापकों का त्यागपूर्ण जीवन आदि अनेक ऐसे तत्व हैं जो आज भी उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। वैभव की चमक–दमक, हिंसा से युक्त परिवेश, धन व अधिकार की लालसा तथा घृणा व द्वेषों से परिपूर्ण वर्तमान जीवन में बौद्ध शिक्षा के ये तत्व सार्थक योगदान कर सकते हैं। आज हमारे देश में बौद्ध शिक्षा विलुप्त हो चुकी है फिर भी इसकी विशेषताएं आधुनिक भारतीय प्रणाली में सम्मिलित की जा सकती हैं।

ISSN-2230-7540

आज के परिवेश में गौतम बुद्ध का शिक्षा दर्शन और भी प्रासंगिक हो गया है। उनके 'आत्म दीपो भव' का सिद्धांत आज के समाज के लिए और उपयोगी हो गया है। अगर व्यक्ति में समाज के प्रति सकारात्मक सोच (जो घटता जा रहा है) उत्पन्न करना है तो उनके सुझाए मार्ग को अविलम्ब अपनाना होगा। किसी भी शिक्षण का प्रमुख उद्देश्य व्यक्तित्व एवं चरित्र का सर्वांगीण विकास है। चूंकि बौद्ध दर्शन की शिक्षाएं कायिक, वाचिक एवं मानसिक विशुद्धि का लक्ष्य रखती हैं, अतः इनका उपयोग आधुनिक शिक्षण में भली–भांति किया जा सकता है। मूल्यपरक शिक्षण प्रत्येक शिक्षा व्यवस्था का अंग रहा हैं। बौद्ध दर्शन के अंतर्गत सत्य, अहिंसा, अस्तेत, अपरिग्रह, प्रेम, करुणा, विश्वबंधुत्व सदृश अनेक शाश्वत् मूल्यों को जीवन में आत्मसात् करने पर बल दिया गया है। इन मूल्यों को आधुनिक शिक्षण से सम्बद्ध करके इसे मूल्यपरक बनाया जा सकता है। बौद्ध दर्शन के अंतर्गत सदाचार पर विशेष बल दिया गया है। आज भी शिक्षा का एक प्रमुख लक्ष्य शिक्षार्थी को सदाचारी बनाना है, ताकि वह न केवल ज्ञानी बन सके अपितु सामाजिक व राष्ट्रीय जीवन में एक आदर्श भूमिका निभा सके। बौद्ध शिक्षा के अंतर्गत नारी शिक्षा पर भी विशेष बल दिया गया है। आधुनिक शिक्षा पद्धति में भी नारी शिक्षा के विकास एंव उत्थान पर विशेष बल दिया जा रहा है।

बौद्ध शिक्षण पद्धति में दूर–दूर से आए हुए भिक्षु अनुशासनबद्ध होकर शिक्षा ग्रहण करते थे। आज भी अनुशासन पालन शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य है, क्योंकि अनुशासन के बिना किसी भी लक्ष्य की प्राप्ति नहीं की जा सकती। बौद्ध संघ में प्रविष्ट होने वाले भिक्षु स्वयं भिक्षार्जन करके ज्ञानार्जन करते थे। इस प्रकार बौद्ध शिक्षण विद्यार्थी को स्वावलंबी बनाना था। आज भारतीय शिक्षा के संबंध में स्ववित्तपोषित शिक्षा प्रणाली की बात की जा रही है जिसमें शिक्षार्थी का आत्मनिर्भर या स्वावलंबी बनना आवश्यक है।

बौद्ध शिक्षण के अंतर्गत शिक्षार्थी के साथ विचार सम्प्रेषण हेतु जनभाषा या लोक भाषा का प्रयोग किया जाता था। आज भी यह अनुभव किया जा रहा है कि शिक्षा में विचार–विनिमय के माध्यम वे भाषाएं हो जिनके द्वारा सम्प्रेषण को अधिकाधिक प्रभावोत्पादक बनाया जा सके। बौद्ध दर्शन की शिक्षाएं सर्वकालिक एवं सर्वदेशिक हैं। तृष्णा चाहे आज के मानव की हो अथवा आज से पहले के, वह सदैव विनाशकारी तथा सकल दुःखों की जननी है। पदार्थो की लिप्सा कभी भाांत नही हो सकती है। आज भी उपभोक्तामूलक संस्कृति का त्रासदी का कारण भी यही तृशणा है। बोधि अथवा ज्ञान के द्वारा व्यक्ति समाज में चहुमुखी विकास कर सकता है। बुद्ध की शिक्षाएं समस्त मानव मात्रा के लिए थी, किसी विशेष वर्ग के लिए नहीं। इनमें स्त्री–पुरुष, धर्म आदि का कोई भेद स्वीकार्य न था। बुद्ध न तो अंधविश्वासी थे और न ही वे अंध विश्वासों को बढ़ावा देने के पक्ष में थे। अतः उन्होंने इस बात पर बल दिया कि किसी भी विचार का अंधनुकरण न कर उसे तर्क की कसौटी पर कसा जाए और उसके खरा उतरने पर ही उसे स्वीकार किया जाए। बुद्ध का यह दर्शन व्यक्ति को प्रगतिशील बनने की प्रेरणा प्रदान करता है।